अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण
कानून अनुसंधान केन्द्र

भारत मे जल कानून एवं जल क्षेत्र के सुधार

फिलिप कलैट

आई.ई.एल.आर.सी. वर्किंग पेपर
2006 - 01

यह शोध पत्र पी.डी.एफ. फॉर्मेट मे आई.ई.एल.आर.सी. वेबसाइट से इस पते पर डाउनलोड कर सकते हैं
http://www.ielrc.org/content/w0601.pdf

International Environmental Law Research Centre
International Environment House
Chemin de Balexert 7, 1219 Châtelaine
Geneva, Switzerland
info@ielrc.org
www.ielrc.org

विषय सूची

1.	जल नीतियां	3
2.	वर्तमान तथा प्रस्तावित विधायी उपाय	7
	क. जल विनियामक प्राधिकरण	7
	ख. भू जल	11
	ग. विकेन्द्रीकरण तथा सहभागिता	13

भारत में जल कानून एवं जल क्षेत्र के सुधार

फिलिप कलैट

स्वच्छ जल के विनियमन पर पिछले डेढ़ सौ वर्षों में अधिकाधिक ध्यान दिया गया है। इसका कारण कुछ हद तक प्रति व्यक्ति उपलब्धता में होती जा रही कमी है तो कुछ हद तक आर्थिक संसाधन के रूप में जल का बढ़ता रहा उपयोग है। प्रत्येक पीढ़ी को अधिक जल संकट का सामना करना पड़ता है जिसे समयांतर्गत कुछ हद तक जल के उपयोग को विनियमित करके तो कुछ हद तक पूर्व में जिस पानी तक हमारी पहुंच नहीं थी उस तक पहुंचने के नए तकनीकी समाधान ढूंढ़ कर किया गया है।

पानी के विनियमन, स्वामित्व तथा उपयोग से संबंधित कानूनी ढांचा समय के साथ – साथ विकसित हुआ। वैसे यह ध्यान देने योग्य है कि जबकि जल क्षोत्र की चुनौतियां पिछली शताब्दी में नाटकीय ढंग से विकसित हुई हैं, जल कानून के आधारभूत सिद्धांत समय के साथ – साथ आपेक्षािक रूप से अपरिवर्तित रहे हैं। इस प्रकार अभी हाल तक भू जल का विनियमन अभी भी मोटे तौर पर सामान्य कानून के सिद्धांतों पर आधारित था जबकि सतही जल अभी भी प्रायः दशकों पूर्व अपनाए गए कानूनों पर आधारित है जिनमें आजादी के पूर्व के कानून भी शामिल हैं। प्रारंभ में ही जल कानून की दो और महत्वपूर्ण बातों को बता देना जरूरी है। पहली बात यह कि पानी के नियंत्रण के लिये कानूनी सिद्धांतों का महत्वपूर्ण भण्डार तो है लेकिन इस मामले का सम्पूर्णता में विचार करते हुए इनका एकीकरण करने वाला कोई जल अधिनियम नहीं बना। परिणामस्वरूप आज भी जल कानून संवैधानिक सिंद्धांतों, सामान्य कानून, आजादी के पहले और आजादी के बाद अंगीकार किये गये अधिनियमों तथा विभिन्न न्यायिक व्यवस्थाओं पर आधारित है। इसका मतलब यह है कि समस्त सम्बंधित व्यक्तियों तथा संस्थानों के अधिकारों तथा दायित्वों के बारे में अस्पष्टता बनी हुई है। दूसरे, औपचारिक जल कानून में विशिष्टता का आपेक्षािक अभाव इस बात से और भी गंभीर हो जाता है कि यह जल के उपयोग से सम्बंधित बहुत से पारम्परिक तथा धार्मिक नियमों के समानान्तर चलता है जो आज भी प्रचलन में हैं।

जल नियंत्रण तथा उपयोग से सम्बंधित नियामक ढांचे में बदलाव की जरूरत दो अलग अलग किन्तु आपस में जुड़े हुए कारकों से संबंध रखती है। पहला यह कि आज का जल कानून व्यापक रूप से उस माडल पर आधारित है जो सरकार और भू स्वामियों को नियामक ढांचे के केन्द्र में रखता है। जब तक पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता पर्याप्त थी इस व्यवस्था के अंतर्गत निजी क्षोत्र के लोग पानी का जितना भी चाहे उपयोग कर सकते थे वह भी सरकार को आबादी के कम से कम एक हिस्से को पेय जल उपलब्ध कराने से रोके बिना। इस माडल पर उस संदर्भ में पुनर्विचार किये जाने की जरूरत है जिसमें भू स्वामियों द्वारा जल के उपयोग को जल के अन्य सभी उपयोगों की तरह विनियमित किया जाना चाहिये। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इस माडल पर संवैधानिक योजना के दो मौलिक परिवर्तनों के संदर्भ में पुनर्विचार किया जाना चाहिये। ये परिवर्तन हैं – जल के अधिकार को मौलिक

अधिकार के रूप में देखा जाना और संविधान के 73 वें तथा 74 वें संशोधन जिनमें जल के उपयोग पर पंचायतों के अधिक नियंत्रण की व्यवस्था की गई है।

दूसरे यह कि जल कानून को नए तकनीकी समाधानों के दृष्टिगत संशोधित किया जाना चाहिये जैसे कि वे तकनीकी समाधान जिन्होंने इतनी गहराई से पानी निकालने को संभव बना दिया है जहां से बिजली से चलने वाले पम्पों के आने के पहले पानी निकालना संभव नहीं था। पानी के उपयोग में यह वृद्धि उसी समय हुई जब कि विभिन्न स्रोतों से जल प्रदूषण नाटकीय ढंग से बढ़ रहा था। कुल मिला कर स्वच्छ जल की सीमित उपलब्धता, जल की गुणवत्ता और इसकी उपलब्धता के स्थायित्व के प्रति चिन्ता के चलते एक नई विनियामक सोच की आवश्यकता है।

अधिकांश लोग इस बात से सहमत हैं कि जल विनियामक ढांचे में परिवर्तन की आवश्यकता है। लेकिन प्रस्तावित परिवर्तनों के बारे में लोगों के बहुत से भिन्न भिन्न दृष्टिकोण हैं। एक तरफ तो यह प्रस्तावित किया जा रहा है कि वर्तमान प्रणाली से दूर हटते हुए ऐसी प्रणाली अपनानी चाहिये जो पानी को एक 'आर्थिक वस्तु' के रूप में महत्व दे जिसके 'दक्षातापूर्ण प्रबंधन' किये जाने की आवश्यकता है। इसमें सरकार का, अब तक की जा रही विभिन्न जल संबंधित गतिविधियों से, क्रमिक रूप से समुदायों से लेकर कम्पनियों तक विभिन्न निजी कृति के पक्ष में हाथ खींचते जाना शामिल है। दूसरी ओर यह प्रस्तावित किया जा रहा है कि सामाजिक और मौलिक अधिकार के आयामों पर जोर दिया जाय जिसके अंतर्गत पेय जल की व्यवस्था पर जोर दिया जाय – विशेषकर उन करोड़ों लोगों के लिये जिन्हे या तो स्वच्छ जल मिलता ही नहीं या फिर फिर स्वच्छ जल उनके घरों या आहातों में नहीं उपलब्ध है। इस परिप्रेक्षय की मांग है कि जल के उपयोग की श्रेणियों की बीच तथा उन श्रेणियों के अंदर प्राथमिकता निर्धारण पर फिर से विचार किया जाय। उदाहरण के लिये खाद्यान्न की ऐसी फसलों को उगाने पर प्रोत्साहन दिया जाय जो गरीबों और देश के नागरिकों की खाद्यान्न की आवश्यकता को पूरा करने में सीधा योगदान करें।

हाल के वर्षों में केन्द्र और राज्य स्तर पर जल नीति में बहुत से परिवर्तन किये गये हैं तथा बहुत से राज्यों के द्वारा जल नीतियों के अपनाए जाने तथा बहुत से राज्यों में वर्तमान कानूनों में संशोधन या एकदम से नए कानून के लागू होने के कारण परिवर्तनों की गति तेज हो रही है। परिवर्तनों के लागू होने की तीव्रता तथा गति तथा अपनाए गए और भावी परिवर्तनों के महत्व को देखते हुए घटित हो रहे परिवर्तनों पर विचार किया जाना आवश्यक हो गया है। यह इसलिये और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि, जैसा कि आगे के विश्लेषण से स्पष्ट होता है, ये परिवर्तन उस माडल पर आधारित हैं जिसमें जल को एक आर्थिक वस्तु माना गया है। इसके महत्वपूर्ण सामाजिक परिणाम होंगे जिन्हें भविष्य के संशोधित नीति–निर्माता एजेन्डे के केन्द्र में रखना जरूरी है।

इस लेख को तीन भागों में बांटा गया है। पहले भाग में जल क्षोत्रा में प्रस्तावित व्यापक नीतिगत ढांचे का परीक्षाण किया गया है। यह लेख विगत वर्षों में केन्द्र स्तर पर तथा विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाई गई जल नातियों का यह विश्लेषण करता है कि यद्यपि ये अलग अलग हैं किन्तु ये जल अभिशासन के एक सामान्य माडल को प्रस्तावित करती हैं, जिसका आंशिक कारण यह है कि ये नीतियां

अतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रोत्साहित की जा रही जल नीतियों से गहराई से सम्बद्ध हैं। दूसरा भाग जल क्षोत्र के विधायी हस्तक्षोपों के प्रमुख प्रकारों में से तीन पर ध्यान केन्द्रित करता है। इनका सरोकार स्वायत्त जल विनियामक आयोगों के गठन, एक परिवर्तनशील भू जल विनियामक ढांचे तथा सहभागी सिंचाई प्रबंधन के भाग के रूप में जल उपभोक्ता संघों के गठन से है। अंतिम भाग में वर्तमान तथा प्रस्तावित हस्तक्षोपों का समान्य विश्लेषण किया गया है तथा इसमें जल कानून में परिवर्तनों के लिये एक संभावित वैकल्पिक ढांचे की रूपरेखा भी दी गई है।

1. जल नीतियां

पिछले दो दशकों के दौरान नीति निर्माता क्षोत्राों में इस बारे में सहमति में वृद्धि हुई है कि जल नियंत्राण एवं उपयोग के लिये एक समग्र ढांचे की कमी से निपटने की जरूरत है। यह जल आवंटन, नियंत्राण तथा उपयोग की बढ़ती जा रही समस्याओं से जुड़ हुआ है जैसे कि पेय जल स्रोतों का बढ़ता जा रहा प्रदूषण या बड़ी जल अवस्थापनाओं संबंधी विवाद जैसे, बांध संबंधी विस्थापन। यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तनशील प्राथमिकताओं जैसे कि विकास बैंकों द्वारा तथाकथित जल क्षोत्रा के सुधारों के प्रति प्रोत्साहन में वृद्धि तथा जल एवं स्थायित्वशील विकास की घोषणा में परिलक्षित परिवर्तनशील अंतर्राष्ट्रीय जल नीति परिवेश से भी जुड़ा हुआ है।

पिछले दो दशकों के दौरान केन्द्र एवं राज्य स्तर पर जल नीति पर विशेष ध्यान दिया गया है जैसा कि योजना आयोग की चर्चाओं तथा परामर्शों में और राष्ट्रीय जल नीति के अपनाए जाने में परिलक्षित होता है। यह प्रक्रिया व्यापक तो थी किन्तु आपेक्षातया संकीर्ण सिद्धान्तों पर आधारित थी जैसे कि यह स्थानीय स्तर के परम्परागत प्रचलनों तथा नियमों को बहुत महत्व नहीं देती। राज्य एवं केन्द्र स्तर पर जल नीति विकसित करने में पक्षापातपूर्ण रवैया विकास बैंकों, विशेषकर विश्व बैंक तथा एशियाई विकास बैंक की बढ़ती जा रही भूमिका के चलते और भी गंभीर हो चला है।.दर असल यह ध्यान देने योग्य है कि हाल की जल नीतियों में जो उपाय प्रस्तावित किये गये हैं उनकी जड़ें सीधे विश्व बैंक की संस्तुतियों में देखी जा सकती हैं। उदाहरण के लिये इनमें लागत वसूली (पूर्ण) के सिद्धान्त का लागू किया जाना, जल विनियामक अभिकरण की स्थापना या किसानों से संचालन एवं रखरखाव की लागतों का भुगतान कराया जाना शामिल हैं। यह इसलिये महत्वपूर्ण है कि विश्व बैंक वर्तमान में भारत के लिये नीतिगत संस्तुतियों का एक और सेट तैयार कर रहा है जिन्हें यदि पूर्व की संस्तुतियों की तरह फिर से क्रियान्वित किया गया तो और भी बदलाव देखने को मिलेंगे। और फिर यह भी कि राज्यों द्वारा लागू किये जाने वाले कानून तथा नीतिगत परिवर्तनों के प्रकारों तथा एशियाई विकास बैंक या विश्व बैंक के द्वारा वित्तपोषित जल क्षोत्रा के सुधारों की परियोजनाओं में स्पष्ट अंतर्सम्बंध हैं।

केन्द्रीय एवं राज्य जल नीतियां वह व्यापक ढांचा उपलब्ध कराती हैं जिनके अन्दर कानूनो को लागू किया जाता है। नीतियां बाध्यकारी तो नहीं होती हैं और सामान्य रूप से निरूपित की जाती हैं लेकिन वे प्रस्तावित किये जा रहे परिवर्तनों के लिये महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। जल नीतियां बहुत से प्रकार के कारकों को आच्छादित करती हैं जिनका व्यापक विश्लेषण इस लेख की सीमा के वश

का नहीं है। फिर भी केन्द्रीय जल नीति एवं राज्य जल नीतियों के कुछ मुख्य सिद्धान्त, लागू किये जा रहे तथा भविष्य में क्रियान्वित होने वाले परिवर्तनों के सूचक के रूप में पुनरीक्षाण किये जाने योग्य है।

प्रथमतः, पानी के ऐसे प्राकृतिक या आर्थिक संसाधन के रूप में देखे जाने पर जोर है जिसका उपयोग अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षामता बढ़ाने के लिये किया जा सकता है – कृषि उत्पादन के लिये सिंचाई के पानी से लेकर जल विद्युत के लिये पानी तक। केन्द्रीय जल नीति इस बात का रोना रोती है कि वर्तमान में आर्थिक विकास के लिये उपलब्ध जल के अपर्याप्त प्रतिशत का ही उपयोग किया जा रहा है जिसके चलते जल उपयोग के गैर परम्परागत तरीकों जैसे समग्र जल उपलब्धता में सुधार के लिये अंतर क्षोत्रीय जल स्थानांतरण और समुद्री जल के डी–सैलिनेशन जैसे उच्च तकनीकी समाधानों की जरूरत है। इस संदेश को विश्व बैंक के ताजा प्रारूप प्रतिवेदन से और बल मिलता है जिसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि भारत ने पर्यापत मात्रा में वृहत् जल अवस्थापनाएं नहीं विकसित की हैं।

दूसरे, नीतियों में जल उपयोगों का प्राथमिकता निर्धारण लागू करने की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। बहुत सी नीतियों में यह व्यवस्था की गई है कि पानी का आवंटन निम्नलिखित क्रम में होना चाहिये – पेय जल, सिंचाई, जल–विद्युत, पारिस्थितिकी, कृषि उद्योग और गैर कृषि उद्योग, जल परिवहन तथा अन्य उपयोग। इस प्रकार जल आवंटन में पानी के घरेलू उपयोग पर उच्च प्राथमिकता के रूप में जोर दिया गया है। वैसे प्रत्येक नीति यह भी कहती है कि यह प्राथमिकता सूची आवश्यकता अनुसार बदली भी जा सकती है और इस प्रकार यह सुनिश्चित कर लेती है कि प्राथमिकता निर्धारण की कोई विशेष अहमियत नहीं है। यह ध्यान देने योग्य है कि राज्य जल नीति के लागू हो जाने के बाद के अधिनियमों में, जैसे कि महाराष्ट्र जल संसाधन विनियामक प्राधिकरण अधिनियम 2005 के मामले में, नीति में बताए गए प्राथमिकता निर्धारणों को अधिनियम में स्थान नहीं दिया गया है। यह इस बात का द्योतक है कि नीतियों को स्वतंत्र रूप से नहीं पढ़ा जा सकता क्योंकि उनके कुछ आधारभूत सिद्धान्तों को कानूनों में स्थान नहीं दिया जाता है।

तीसरे, नीतियों की अपेक्षाा है कि जल नियंत्रण तथा उपयोग में सहभागिता और विकेन्द्रीकरण हो। सहभागिता के बारे में नीतियों में सामान्यतः यह व्यवस्था होती है कि 'लाभार्थियों तथा हितग्राहियों की सहभागिता परियोजना बनाने के स्तर से ही होनी चाहिये। हाल की जल नीतियों का सबसे अधिक ध्यान देने योग्य पहलू यह है कि इन्होंने सहभागिता को विकेन्द्रीकरण से जोड़ा है। इस प्रकार सहभागी प्राविधानों का केन्द्रबिन्दु सिंचाई प्रणालियों का नियंत्राण उपभोक्ताओं को देने की तरफ ध्यान देना है। इसका मुख्य आधार किसानों को समुचित लाभ दे पाने में सरकार की असमर्थता है। इसमें आधारभूत विचार सिंचाई प्रणालियों के रखरखाव तथा इनमें निहित वित्तीय लागत की जिम्मेदारी लेने तथा आवंटित जल के आपस में बंटवारे हेतु उपभोक्ताओं को अनुमति देने और इसके लिये उन्हें बाध्य करने के माध्यम से सिंचाई प्रणालियों के पूर्ण या आंशिक नियंत्रण को उपभोक्ताओं को स्थानान्तरित करने का है।

वैसे तो सहभागिता को एक ऐसे सामाहारिक शब्द के रूप में लिया जाता है जिसमें जल अवस्थापनाओं के नीति नियोजन और परियोजना की डिजाइन से लेकर प्रबंधन तक में सहभागिता का

समावेश है लेकिन व्यवहार में इस प्रक्रिया के अंतिम सिरे पर ही सहभागिता पर ध्यान दिया जाता है। दरअसल यहां पर सहभागिता एक तरह से छद्म शब्द है। एक तरफ तो जो कुछ भी अवधारित किया गया है वह कृषकों तथा उपभोक्ताओं को प्रभावित करने वाले निर्णयों में उनकी सहभागिता की 'संभावना' से उतना सरोकार नहीं रखता जितना कि वाणिज्यिक सिद्धान्तों पर आधारित स्थानीय जल के उपयोग तथा नियंत्रण की एक नई प्रणाली को समग्र रूप में थोपने से है – उन जगहों पर भी जहां जल अभिशासन की सफल प्रणालियां पहले से ही मौजूद हैं। दूसरी तरफ, स्थानीय स्तर पर जिस सहभागिता की बात की गई है वह पानी का उपयोग करने वाले सभी लोगों की सहभागिता नहीं है। विगत वर्षों में जिन जल उपभोक्ता संघ योजनाओं को स्थापित किया गया है उनमें सामान्यतः यह व्यवस्था है कि उसके सदस्य भू स्वामी या भूमि पर काबिज लोग हों। भू स्वामित्व तथा भूमि पर कब्जे को पानी के उपयोग तथा नियंत्रण को शासित करने के आधार के रूप में महत्व दिये जाने का असर यह होगा कि भूमि तक पहुंच रखने वाले लोगों तथा शेष सभी लोगों के बीच पानी तक पहुंच के मामले में असमानताएं सुदृढ़ होंगी। जो भी हो, इस प्रकार की योजनाएं उन अर्थों में सहभागी नहीं कही जा सकतीं जिन अर्थों में सहभागिता को अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर समझा जाता है क्योंकि इसकी परिभाषा के अनुसार इसमें सभी संबंधित लोगों की सहभागिता होनी चाहिये।

नीतियों में अवधारित किस्म की सहभागिता तथा विकेन्द्रीकरण के लक्षयों को कर्नाटक जल नीति में स्पष्टता के साथ निरूपित किया गया है जो यह व्यवस्था देती है कि 'अतिम लक्षाय संचालन, प्रबंध, तथा जल प्रभार के संग्रह को उपभोक्ता समूहों को स्थानान्तरित करना है।' जल नीतियों के मुख्य व्यावहारिक उद्देश्यों मे से एक यह सुनिश्चित करना है कि उपभोक्ता 'संचालन तथा रखरखाव' हेतु भुगतान करें।

सहभागी प्रविधानों का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि वे पानी के घरेलू उपयोग को अपनी परिधि से बाहर तो नहीं करते लेकिन उनका जोर अक्सर सिंचाई प्रणालियों पर ही रहता है। इस प्रकार राजस्थान जल नीति में जल उपभोक्ताओं को किसानों का समानार्थी माना गया है जिनसे अपेक्षाा की गई है कि वे 'सिंचाई प्रणालियों के प्रबंधन में सहभागिता करें, विशेषतः जल वितरण में तथा जल प्रभार के संग्रहण में।' यह समस्याजनक है, क्योंकि सिंचाई और घरेलू उपयोग पर साथ साथ ध्यान दिया जाना चाहिये। मतलब यह कि जिन ग्रामीणों के पास जमीन नहीं है उनका भी जल अभिशासन में बड़ा हित निहित है और उन्हें प्रत्येक जल संबंधी योजना का हिस्सा बनाया जाना चाहिये।

भले ही सहभागिता तथा विकेन्द्रीकरण वर्तमान जल नीतियों के महत्वपूर्ण पहलू हैं लेकिन प्रवृत्ति निश्चय ही केवल स्थानीय स्तर पर नियंत्राण देने की नहीं है। दर असल स्थानीय स्तर पर सत्ता का हस्तांतरण केवल कुछ विशिष्ट गतिविधियों में ही प्राविधानित है। बहुत से क्षोत्रों में सरकार या तो अपना वास्तविक विशेषाधिकार बनाए रखना चाहती है या उसका विस्तार भर करना चाहती है। राष्ट्रीय नीति के स्तर पर, इस आशय का का स्पष्ट वक्तव्य दिया गया है कि सरकार को एक नदी क्षोत्र से दूसरे नदी क्षोत्रा तक पानी के स्थानान्तरण की व्यवस्था करने में सक्षाम होना चाहिये। इस पर नदियों को आपस में जोड़ने की विशाल परियोजना के माध्यम से कार्य किया जा रहा है। राज्य स्तर पर,

अधिकाधिक राज्य ऐसे भूजल को नियंत्रित एवं विनियमित करने की दिशा में प्रयासरत हैं जिसका उपयोग अब तक व्यापक रूप से भू स्वामित्व से जुड़ा हुआ था। दूसरे शब्दों में, कुछ क्षोत्रों में किया जा रहा विकेन्द्रीकरण अन्य क्षोत्रों में केन्द्र/राज्य सरकार के नियंत्राण को सुदृढ़ करने के प्रयासों के साथ साथ हो रहा है।

चौथी बात यह कि हाल की जल नीतियां पानी के 'अधिक दक्षातापूर्ण और उत्पादकतापूर्ण तरीके से' इस्तेमाल को सुनिश्चित करने के लिये आम तौर पर 'प्रोत्साहनों' का प्रयोग कर रही हैं। इससे निकल कर आने वाला एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष जल नियंत्रण एवं उपयोग के जल संसाधन परियोजनाओं के नियोजन से विकास एवं प्रबंधन तक सभी पहलुओं में निजी क्षोत्रा की सहभागिता लेना है। निजी क्षोत्रा की सहभागिता के लिये पृथक किया गया एक क्षोत्रा नगरीय जल आपूर्ति का है।

निजी क्षोत्रा की सहभागिता, लागत वसूली को सुनिश्चित करने के लिये कार्यनीति के एक हिस्से के रूप में सभी उपभोक्ताओं के लिये जल प्रभार को लागू करने से सम्बंधित है। लागू किया गया आधारभूत सिद्धान्त यह है कि जल के प्राविधान के लिये उपभोक्ता कम से कम संचालन एवं अनुरक्षाण प्रभारों का भुगतान करें। भविष्य में पूरी लागत वसूली करने का विचार है जिसका मतलब होगा कि उपभोक्ताओं को पूंजीगत लागत भी अदा करनी होगी। यह कार्यनीति स्वजलधारा मार्गदर्शक सिद्धान्तों के परिप्रेक्षय में पहले से ही क्रियान्वित की जा रही है जिसके अंतर्गत उपभोक्ताओं को नई अवस्थापनाओं की पूंजीगत लागत की आंशिक जिम्मेदारी तथा संचालन एवं अनुरक्षाण की पूरी जिम्मेदारी उठानी होगी।

पांचवी बात यह कि जल नीतियों में जल अधिकारों के लागू किये जाने का प्रस्ताव किया गया है। इसमें कोई शक की गुंजाइश नहीं है कि जल संबंधी अधिकार कोई नई बात नहीं हैं और पानी के नियंत्राण के संबंध में बहुत से कानून पहले से ही विद्यमान हैं। ये नीतियां विशेष रूप से दो बातें करती हैं। एक तरफ, कुछ नीतियां इस बात का पुनर्कथन करती हैं कि 'राज्य जल संसाधनों का एक मात्र स्वामी है'। दूसरी तरफ ये नीतियां उपभोक्ताओं के पक्षा में जल अधिकारों के सृजन का प्रस्ताव करती हैं। ये अधिकार जल संसाधनों के प्रबंधन में सहभागिता, जल उपभोक्ता संघों के गठन तथा व्यापार के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक हैं। दर असल कुछ नीतियों में व्यापार का स्पष्ट प्राविधान भी किया गया है।

अंततः, नीतियां विधिक तथा संस्थागत सुधारों की व्यापक श्रृंखला के लागू किये जाने की मांग करती हैं। इनमें विद्यमान कानूनों में विभिन्न संशोधनों का किया जाना तथा नए कानूनों का लागू किया जाना शामिल है। तीन मुख्य पहलुओं को छांटा गया है। ये हैं – जल अभिशासन के विकेन्द्रीकरण के लिये जल उपभोक्ता संघों के गठन के लिये विधिक ढांचे का लागू किया जाना, जल संसाधन प्राधिकरण के गठन के लिये कानूनों को लागू करना जिसकी मुख्य विशेषता विद्यमान सिंचाई तथा अन्य जल संसाधन विभागों से व्यापक स्वतंत्राता होगी और भूजल का विनियमन।

जिन नीतियों का ऊपर विश्लेषण किया गया है उनमें वर्णित सिद्धान्त राज्य एवं संघ स्तर पर जल विनियामक ढांचे में बड़े परिवर्तन करने की इच्छा की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि

प्रारम्भ में ही संकेत दिया गया था, विद्यमान कानूनों में परिवर्तन करने के बहुत से कारण हैं जिनमें न तो घरेलू उपयोग को प्राथमिकता देते हुए पानी के समतामूलक बंटवारे की कोई व्यवस्था है और न ही पानी के पर्यावरण की दृष्टि से स्थयित्वशील उपयोग की। नीतियां एक व्यापक ढांचा प्रस्तुत करती हैं जिसे विधिक उपायों के माध्यम से विभिन्न तरीकों से क्रियान्वित किया जा सकता है। फिर भी, जैसा कि यहां पर विशेष रूप से उद्धृत सिद्धान्तों से स्पष्ट है, जल नीतियों में विधायी परिवर्तनों की दिशा का स्पष्ट संकेत है। नीतियों में से निकल कर आने वाले प्राथमिक तत्वों में से एक यह है कि, प्रस्तावित परिवर्तनों का केन्द्र जल अभिशासन है। दूसरे शब्दों में अधिकांश जोर जल प्रणालियों को वाणिज्यिक सिद्धान्तों पर संचालित करने के उपायों को ढूंढ़ने पर दिया गया है बनिस्बत उन उपायों के जो इसे अधिक समता मूलक या पर्यावरण की दृष्टि से अधिक स्थायित्वशील बनाएं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ध्यान अभिशासन, जल विज्ञान और मानवाधिकार के व्यापक मुद्दों की अपेक्षाा 'जल प्रबंधन' पर अधिक है।

2. वर्तमान तथा प्रस्तावित विधायी उपाय

कम से कम पिछले दशक से 'जल क्षोत्रा के सुधार' विभिन्न रूपों में और विभिन्न राज्यों में चल रहे हैं। यह भाग उन सभी परिवर्तनों के बारे में बताने की कोशिश नहीं करेगा जो घटित हुए हैं अपितु नवीनतम विधायी हस्तक्षोपों पर केन्द्रित रहेगा। ऐसा दो मुख्य कारणों से है। प्रथमतः, 1990 के दशक से प्रस्तावित उपायों में विकास देखने को मिला। यह भारत में और बाहर प्राप्त किये गये अनुभवों से तथा अंतर्राष्ट्रीय और घरेलू नीतियों की उन अनुभूत आवश्यकताओं से सम्बंधित है जिनके कारण सुधारों को आगे बढ़ाने के लिये विभिन्न कार्यनीतियों को अपनाने के लिये समूह बने। दूसरे, इस बात की संभावना है कि महाराष्ट्र में हाल ही में अपनाए गये कानून तथा दिल्ली में प्रस्तावित परिवर्तन अन्य राज्यों में जैसे कि मध्य प्रदेश में किये जाने वाले परिवर्तनों के लिये माडल का काम कर सकता है।

देश में विद्यमान जल कानून को संशोधित करने के लिये जिन मुख्य विधायी परिवर्तनों को लागू किया गया है और जो प्रस्तावित हैं उनमें से तीन का विश्लेषण इस भाग में किया गया है। इनमें जल विनियामक प्राधिकरण की स्थापना, भू जल का विनियमन तथा जल उपभोक्ता संघों की स्थापना शामिल हैं।

क. जल विनियामक प्राधिकरण

पहला और सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण प्रकार का विधायी हस्तक्षोप जल विनियामक प्राधिकरण की स्थापना है। महाराष्ट्र जल संसाधन विनियामक प्राधिकरण अधिनियम 2005 तथा दिल्ली जल एवं अपशिष्ट जल सुधार विधेयक 2004 इस क्षोत्रा के दो महत्वपूर्ण नवीन प्रस्ताव हैं। इनका अलग अलग विश्लेषण किया गया है क्योंकि महाराष्ट्र अधिनियम, अधिकतर नगरीय मुद्दों पर केन्द्रित दिल्ली विधेयक की तुलना में बहुत अधिक व्यापक मुद्दों को आच्छादित करता है।

जल विनियामक प्राधिकरण की स्थापना के पीछे आधारभूत विचार जल आवंटन तथा उपयोग के मामले में राज्य के प्रभाव को आंशिक रूप से समाप्त करने का है। दूसरे शब्दों में जल विनियामक प्राधिकरण सिंचाई विभाग तथा जल संबंधी अन्य सरकारी संस्थानों द्वारा वर्तमान में किये

जा रहे कुछ कार्यों को अपने हाथ में ले लेगा। महराष्ट्र में इस प्राधिकरण को व्यापक अधिकार दिये गये हैं।

- प्राधिकरण का पहला व्यापक विशेषाधिकार सतही और उप सतही जल को सम्मिलित करते हुए, राज्य के जल संसाधनों के लिये एक विनियामक प्रणाली की स्थापना करना है ताकि इनके उपयोग को विनियमित किया जा सके और पानी का, इसके उपयोग की विभिन्न चिन्हित श्रेणियों के बीच, उपयोग हेतु बंटवारा किया जा सके।

- साथ ही साथ प्राधिकरण को पानी का अपव्यय रोकने के लिये इसके दक्षातापूर्ण उपयोग को प्रोत्साहित करना है तथा इसके उपयोग के 'तर्क संगत' मानदण्ड निर्घारित करने हैं।

- प्राधिकरण का यह भी कार्य होगा कि वह जल की उपलब्धता को देखते हुए विशिष्ट उपभोक्ताओं या उपभोक्ता समूहों के लिये जल की विशिष्ट मात्रा निर्धारित करे।

- प्राधिकरण से यह भी अपेक्षा की गई है कि वह जल प्रभार निर्धारित करने के लिये एक जल प्रशुल्क प्रणाली की स्थापना भी करे। यह कार्य सिंचाई परियोजनाओं के प्रबंधन, प्रशासन, संचालन और अनुरक्षाण की सम्पूर्ण लागत वसूली के आधारभूत सिद्धान्त पर किया जाएगा।

- प्राधिकरण को सौंपे गए कार्यों में से एक महत्वपूर्ण कार्य जल आवंटन हेतु अधिकार निर्गत करने के मानक निर्धारित करना है। धारा 11 (जी) पप के अनुसार सिंचाई, ग्रामीण और नगरपालिका जल आपूर्ति तथा औद्योगिक जल आपूर्ति को भी सम्मिलित करते हुए जल के समस्त मुख्य उपभोक्ताओं के लिये अधिक मात्रा में जल आवंटन हेतु अधिकार निर्गत करने के मानक निर्धारित किये जाने हैं। चूंकि अधिनियम ने विशिष्ट मार्ग निर्देश नहीं निर्धारित किये हैं इसलिये मुख्य उपयोगों के बीच प्राथमिकता निर्धारण के मामले में प्राधिकरण को बहुत अधिक स्वतंत्रता है।

- प्राधिकरण को सौंपा गया एक और कार्य जल के आवंटन हेतु अधिकार और कोटा के व्यापार के लिये मानक निर्धारित करना है। चूंकि जल के आवंटन हेतु अधिकार के व्यापार का विचार ही बिल्कुल नया है, अधिनियम में यह प्राविधान किया गया है कि व्यापार का आधार यह है कि जल के आवंटन हेतु अधिकार 'ऐसे यूसूफ्रक्चुअरी अधिकार माने जाएंगे जिन्हें हस्तांतरित किया जा सकता है, जिनका वस्तु विनिमय किया जा सकता है, जिसे बाजार प्रणाली के अंतर्गत या प्राधिकरण द्वारा विनियमन या नियंत्रण के अनुसार वार्षिक या मौसमी आधार पर खरीदा या बेचा जा सकता है।'

प्राधिकरण के विशद अधिकारों का प्रयोग इसे आबद्ध करने वाली सामान्य नीतियों तथा राज्य जल नीति के ढांचे के अंतर्गत रहते हुए किया जाना है। कुछ विशिष्ट तत्वों का उल्लेख किया जा

सकता है। प्रथमतः, जल की गुणवत्ता के मामले में प्राधिकरण 'प्रदूषण कर्त्ता भुगतान करेगा' के सिद्धान्त पर कार्य करना होगा। दूसरे, जल अधिकारिता के धारकों को उपलब्ध कराये जाने वाले पानी का आयतन विशिष्ट मानकों के आधार पर निर्धारित किया जाएगा। इनमें, उदाहरण के लिये, समस्त भूस्वामियों के बीच पानी का समता मूलक बंटवारा और निजी क्षोत्र की विद्यमान लिफ्ट इरिगेशन परियोजनाओं की पांच वर्ष तक ग्रैन्डफादरिंग शामिल है। तीसरे, दो से अधिक बच्चों वाले किसी भी व्यक्ति को कृषि के लिये जल आवंटन हेतु अधिकार प्राप्त करने के लिये प्रचलित दरों से 50 प्रतिशत अधिक का भुगतान करना होगा।

ये तीन भिन्न भिन्न तत्व कारकों के उस विस्तार के बारे में संकेत देते हैं जिनको प्रधिकरण को ध्यान में रखना है। इन नीतियों की एक विशेषता यह भी है कि उनमें एक दूसरे की विरोधाभासी होने की संभावनाएं हैं। इस प्रकार 3 बच्चों वाले एक लघु भू स्वामी को पड़ोस के बड़े किसान के मुकाबले अपने पानी के लिये 50 प्रतिशत अधिक भुगतान करना होगा भले ही 'समता मूलक वितरण' के सिद्धान्त को इस रूप में समझा जाना चाहिये कि लघु और निर्धन किसानों की पानी की जरूरतों को प्राथमिकता दी जाए। यह भी उल्लेखनीय है कि 'समता मूलक वितरण' का सिद्धान्त भूमि पर काबिज लोगों के बीच ही लागू होता हुआ प्रतीत होता है जिसका मतलब यह हुआ कि एसा काई भी व्यक्ति जिसके पास कोई जमीन नहीं है, इस प्राविधान की परिधि से बाहर है।

जल विनियामक प्राधिकरण की स्थापना का एक महत्वपूर्ण पहलू जल संसाधनो पर, जैसा कि प्रस्तावित है, सुदृढ़ नियंत्रण से सम्बंधित है। अधिनियम में सामान्य सिद्धान्त के रूप में यह व्यवस्था है कि किसी भी स्रोत से किसी भी जल का उपयोग संबंधित नदी क्षोत्र अभिकरण से अधिकारिता प्राप्त करने के बाद ही किया जा सकता है। उसके कुछ अपवाद दिये गए हैं जैसे कि घरेलू उपयोग के लिये कुएं (बोरिंग वाले और नल कूपों को सम्मिलित करते हुए) या कृषि के लिये पानी के विद्यमान उपयोगों की कम से कम प्रारम्भिक चरण में ग्रैण्डफादरिंग।

दिल्ली के प्रस्तावित विधेयक गैर राजनीतिक जल एवं अपशिष्ट जल नियामक आयोग के गठन का प्रस्ताव करके महाराष्ट्र अधिनियम में प्रस्तावित ढांचे का अनुसरण करता है। इस आयोग के केन्द्रीय कार्यों में से एक जल उपयोग, अपशिष्ट जल के निस्तारण, थोक विक्रय, तथा अधिक और फुटकर मात्रा में आपूर्ति के लिये प्रशुल्क निर्धारित करना होगा। इसमें भूजल का उपयोग भी शामिल है। केवल टैंकर आपूर्ति और बोतल में भरा हुआ पानी ही ऐसी जल सम्बंधी आपूर्तियां हैं जो आयोग की परिधि से बाहर रह गई हैं। आयोग को अपने कार्य सम्पादित करते समय बहुत से सिद्धान्तों का उपयोग करने के निर्देश हैं। ये हैं जल क्षोत्र में प्रतिस्पर्धा, दक्षाता और मितव्ययिता को प्रोत्साहन। आर्थिक मानकों पर यह ध्यानाकर्षण दिल्ली के नागरिकों के घरेलू उपयोग के लिये पानी तक पहुंच के अधिकार के किसी भी संदर्भ से विचलित नहीं होता। दर असल प्रस्तावित उपायों में यह बिल्कुल ही स्पष्ट कर दिया गया है कि इस अधिनियम के प्रभावी होने की तिथि से जल क्षोत्र का अभिशासन आर्थिक और पर्यावरणीय सरोकारों से होगा और किसी भी सामाजिक सरोकार पर इनके बाद ही ध्यान दिया जाएगा, – पानी के मौलिक अधिकार की तो बात ही क्या करें जिसके लिये इस योजना में कोई जगह नहीं है।

यह भी उल्लेखनीय है कि जल प्रशुल्क की जानकारी देने वाले सिद्धान्त वित्तीय स्थायित्वशीलता मांग प्रबंधन तथा पानी के उपयोग में दक्षाता और मितव्ययिता को प्रोत्साहित करने वाले कारक तथा लागत वसूली के सिद्धान्त हैं। इस सूची से छेड़छाड़ करने वाले कारक बस भुगतान करने की क्षामता के मानदण्ड का संज्ञान और उपभोक्ताओं का हित है। वैसे इन दो शर्तों को अपने आप में ही पूरा किया जाना चाहिये। प्रथमतः समता का सिद्धान्त 'जो भुगतान करने की क्षामता के मानदण्ड' को संज्ञान में लेने को प्रोत्साहित करता है, निर्धन लोगों को 'सुस्पष्ट रूप से लक्षित तथा पारदर्शी' सब्सिडी के प्राविधान का आधार मात्र है, जिससे यह साफ मतलब निकलता है कि यह प्रशुल्क निर्धारण की जानकारी देने वाला कारक नहीं है अपितु प्रशुल्क निध्ररण के बाद किया गया एक अतिरिक्त उपाय मात्र है। दूसरे उप्भोक्ताओं के हितों को संज्ञान में लेकर इस बात को स्वीकार किया गया है कि पानी का उपयोग करने वाले नागरिक उपभोक्ता हो गये हैं। 'पानी के मौलिक अधिकार सम्पन्न नागरिक' और एक ऐसे 'उपभोक्ता' के बीच मौलिक अंतर है जिसके अधिकार उपभोक्ता संरक्षाण अधिनियम– 1986 जैसे संर्कीणता से परिभषित कानूनों द्वारा नियंत्रित अधिकार ही हैं।

इस विधेयक का एक और महत्वपूर्ण तत्व दिल्ली सरकार और आयोग के बीच प्रस्तावित शक्ति संतुलन है। सरकार के पास जनहित के नीतिगत मामलों में निर्देश देने के अधिकार सुरक्षित हैं किन्तु कुल मिला कर विधेयक की स्पष्ट मंशा सरकारी नियंत्रण को अधिकतम संभव सीमा तक कम करने की है। इसे उदाहरण के लिये इस बात में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि सरकार के पास ''जल आपूर्ति और अपशिष्ट जल के निस्तारण के लिये अनुमन्य सब्सिडी के संबंध में नीतिगत निर्देश निर्गत करने के'' अधिकार तो हैं लेकिन इसे सब्सिडी की धनराशि दिल्ली जल बोर्ड या संबंधित कंपनी को वापस देनी होगी । और फिर धारा 16(3) में यह व्यवस्था है कि इन धनराशियों को सरकार द्वारा वापस करने की शर्तें और समय सीमा आयोग द्वारा निश्चित की जायेगी और अंत में सरकार दिल्ली जल क्षोत्र में असहायता की स्थिति में आ जाती है क्योंकि यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह जल क्षोत्र में प्रस्पावित विधेयक या नियम के बारे में आयाग से परामर्श करे। जबकि इस प्रकार की योजना में विधान सभा की बहुत कम भूमिका रह जाती है यह उल्लेखनीय है कि यह बहुत ही भीमकाय प्राविधान भी विधायिका के एक पूर्व के विधेयक के प्रारूप से कमजोर पड़ जाता है जिसमें केवल 'परामर्श' की ही व्यवस्था नहीं दी गई बल्कि ये निर्देश भी दिये गये कि सरकार को आयोग की संस्तुतियों को अनिवार्य रूप से ध्यान में रखना होगा।

व्यवहार में, इस विधेयक द्वारा प्रस्तावित सबसे जल्दी लागू होने वाला और दूरगामी परिवर्तन, दिल्ली जल बोर्ड का तथाकथित पुनर्गठन है। यह अति उत्साह दिल्ली जल बोर्ड के निगमीकरण या निजीकरण की दिशा में है जो या तो किसी निजी कम्पनी की स्थापना के द्वारा होगा जो पूरे दिल्ली जल बोर्ड का अधिग्रहण कर लेगी और इस प्रकार एकाधिकार पूर्ण आपूर्तिकर्त्ता बन जाएगी या फिर बहुत सी निजी कम्पनियों की स्थापना के द्वारा होगा जो अलग अलग कार्यों या दिल्ली के अलग अलग क्षोत्रों में कार्य करेंगी। विधेयक का अधिकांश हिस्सा 'प्रबंधन के मुद्दों', 'दक्षाता' एवं 'प्रतिस्पर्धा' के इर्द गिर्द घूमता है। यह सुनिश्चित करने की कोशिश में कि अधिनियम के अंतर्गत गठित कम्पनी/कम्पनियों को अधिनियम के द्वारा प्रदान किये गये ढांचे से बाहर की किसी प्रतिस्पर्धा का

सामना न करना पड़े, यह विधेयक, आयोग द्वारा लाइसेन्स प्राप्त व्यक्तियों/कम्पनियों तक ही जल आपूर्ति को प्रभावी रूप से सीमित रखकर, उपचार, पारेषण और पानी की थोक या फुटकर आपूर्ति पर विनियामक नियंत्रण को सुदृढ़ करता है। यह अनिवार्य लाइसेन्स पानी के 'व्यापार' में लगे हुए लोगों के लिये ही है। लेकिन चूंकि इस बात की कोई परिभाषा नहीं की गई है कि विधेयक में व्यापार का क्या मतलब है, एक व्यापक व्याख्या के अंतर्गत छोटे जल आपूर्तिकर्त्ताओं के अधिकार में कटौती की जा सकती है।

कुल मिलाकर, दिल्ली में जल क्षोत्र से संबंधित प्रस्पावित परिवर्तन जल क्षोत्र में अभिशासन संरचना का मौलिक पुर्नगठन करेंगे। इसका मुख्य परिणाम दक्षाता और प्रतिस्पर्द्धा के सिद्धान्तों पर कार्य करने के लिये आदेशित किये गये आयोग से पानी के व्यक्तिगत उपयोगकर्ताओं जिन्हें, अब 'उपभोक्ता' कहा जायेगा तक पानी का निगमीकरण होगा। जल संबंधी वर्तमान चुनौतियों को देखतें हुए ये पविर्तन आश्चर्यजनक है । जबकि दिल्ली जल बोर्ड तथा सार्वजनिक क्षोत्र नें दिल्ली के नागरिकों की उपेक्षााओं के अनुरूप सेवाएं नहीं प्रदान की हैं, जरूरत केवल जल संबंधी सेवाएं प्रदान करने वाले संस्थानो के अभिशासन को ही दुरूस्त करने की ही नहीं है। उन मुद्दों में सें एक जिन पर प्राथमिकता के आधार पर कार्य किया जाना है, वह है सर्वोच्च न्ययालय द्वारा संज्ञान में लिये गये पानी के मौलिक अधिकार का क्रियान्वयन, नयी दिल्ली नगर निगम जैसे आवश्यक न्यूनतम से बहुत अधिक पानी पाने वाले क्षोत्रों से पानी का उन क्षोत्रों की ओर पुनः संतुलन जहां घरेलू इस्तेमाल के लिये पर्याप्त पानी नहीं मिलता, और भूजल के स्रतों के पुर्नभरण के लिये वाटर हारवेस्टिंग से लेकर यमुना में पर्याप्त जल प्रवाह सुनिश्चित करने जैसे उपाय करना । एक सामाजिक आर्थिक जल विज्ञान संबंधी तथा पर्यावरणीय समस्या के प्रबंधकीय समस्या पर ध्यान केन्द्रित करके यह विधेयक अधिकांश निर्धन लोगों के सामने खड़ी सर्वाधिक महत्वपूर्ण चुनौतियों की अनदेखी कर रहा है।

ख. भू जल

भूजल से संबंधित विधायी हस्तक्षोप दो मुख्य कारणों से महत्वपूर्ण है। प्रथमतः विधिक परिप्रेक्षय में देखें तो ये हस्तक्षोप भूजल के नियंत्रण और उपयोग से संबंधित उन नियमों को पुनः निर्धारित करने में प्रमुख संगठित प्रयास हैं जो अभी भी सामान्य कानूनी सिद्धान्तों पर आधारित है और इस कारण से इसे उन संसाधनों का हिस्सा बना देते हैं जिनका भूस्वामी बिना किसी बाहरी हस्तक्षोप के इस्तेमाल कर सकता है। दूसरे ये विधायी हस्तक्षोप इस बात की अनुक्रिया है कि समय के साथ साथ भूजल पानी का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत होता गया है।

इसकी अनुक्रिया को भूजल का स्थायित्वशील प्रयोग सुनिश्चित करने के लिये भूजल के दोहन पर नियंत्रण स्थापित करने के प्रयास के रूप में देखा जा सकता है इसे देश में क्रियान्वित किये जा रहे व्यापक जल क्षोत्र सुधारों के एक तत्व के रूप में भी देखा जा सकता है । जिसके द्वारा भूजल के उपयोग और नियंत्रण संबंधी विधिक सिद्धान्तों में उल्लेखनीय परिवर्तन किया जायेगा।

भूजल विधिक विश्लेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है क्योकि अभी हाल तक यह आम तौर पर प्रायः भू स्वामित्व संबंधी सिद्धान्तों से अभिशासित होता था। और फिर बहुत से अन्य देशों की तर्ज पर भूजल और सतही जल के बीच अधिकाधिक अर्न्तसंबन्ध स्थापित हो जाने के बाद भी विधिक प्रयोजनों के लिये भूजल को प्रायः सतही जल से स्वतंत्र रूप में देखा जाता था। परिणाम स्वरूप कुछ दशक पहले तक भूजल के उपयोग तथा नियंत्रण के बारे में बहुत कम कानूनी प्राविधान थे ताकि इस क्षोत्र में केन्द्र सरकार का हस्तक्षोप सतही जल के संबंध में हस्तक्षोप की तुलना में बहुत कम उललेखनीय था। भूजल को दिये जा रहे अधिकाधिक महत्व के चलते विधायी गतिविधियों की बहुतायत हुई है जिसमें तेजी आती जा रही है और भूजल के लिये चिन्ता अब स्थानीय स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक बढ़ती जा रही है।

राष्ट्रीय स्तर पर यद्यपि केन्द्र सरकार संवैधानिक योजना के अर्न्तगत भूजल विधेयक में दिक्कत महसूस होगी फिर भी पिछले कुछ दशकों में एक ऐसा 'आदर्श कानून' उपलब्ध कराने की दिशा में बहुत से प्रयास हुए हैं जिसे कि राज्य अपना सकें। 1970 में किया गया पहला प्रयास बहुत अधिक सफल नहीं रहा क्योंकि अधिकांश राज्यों ने इसकी अनदेखी कर दी। इस आदर्श विधेयक के नवीन संस्करणों विशेषतः 2005 के नवीनतम संस्करण के पूर्ववर्ती आर्दश विधेयकों की तुलना में विधायी गतिविधियों पर अधिक प्रभावी होने की आशा है क्योंकि बहुत से कारकों ने बहुत से राज्यों में, भूजल संबंधी कानून को प्राथमिकता का विषय बना दिया है।

आदर्श विधेयक की आधारभूत योजना सरकार के सीधे नियंत्रण में कार्य करने वाले भूजल प्राधिकरण की स्थापना हेतु व्यवस्था करना है। इस प्राधिकरण को उन क्षोत्रों को सूचित करने के अधिकार दिये गये है जिसमें भूजल को विनियमित करना आवश्यक समझा गया हो अंतिम निर्णय संबंधित राज्य सरकार द्वारा लिया जाता है। इस योजना में जन सहभागिता संबंधित कोई भी विशिष्ट प्रावधान नहीं है। किसी भी अधिसूचित क्षोत्र के अन्तर्गत भूजल के प्रत्येक उपयोगकर्ता से अपेक्षित होगा कि वह प्राधिकरण के पास परमिट के लिये आवेदन करे, सिवाय उन मामलों के जहां उपयोग कर्ता हैण्डपम्प या एसे कुंए जैसी प्रविधियां प्रस्तावित करें जिससे पानी शारीरिक श्रम द्वारा निकाला जाता है। परमिट देने या मना करने संबंधी प्राधिकरण का निर्णय बहुत से कारकों पर निर्भर करेगा जिनमें तकनीकी कारक जैसे कि भूजल की उपलब्धता , निकाले जाने वाले जल की मात्रा और गुणवत्ता तथा भूजल संरचनाओं के बीच अंतर, शामिल होंगे। प्राधिकरण के लिये यह भी निर्देश है कि वह उस प्रयोजन को भी संज्ञान मे ले जिसके लिये पानी निकाला जाना है किन्तु आदर्श विधेयक तो कि उक्तवत विश्लेषित अधिनियमों में प्रतिबिम्बित होगा, पानी के लिये घरेलू उपयोग को अन्य उपयोगों की तुलना में प्रथमिकता नहीं देता है। उल्लेखनीय है कि अधिसूचित न किये गये क्षोत्रों में भी, संबंधित राज्य में स्थापित कुंओं का पंजीकरण कराना होगा। आर्दश विधेयक में विद्यमान उपयोगों का केवल पंजीकरण कराने के द्वारा ही बनके ग्रैण्डफादरिंग की व्यवस्था है। इसका मतलब यह हुआ कि इन प्रावधानों को आदर्श मान कर विकसित अधिनियम में पानी की विद्यमान कमी वाले क्षोत्रों में पानी के विद्यमान आवश्यक्ता से अधिक उपयोग को नियंत्रित करने के लिये उपायों को प्रभावी आधार नहीं दिया जायेगा और इसमें अधिक से अधिक यह व्यव्स्था की जा सकेगी कि भविष्य के उपयोग अधिक स्थायित्वशील हों।

कुल मिला कर आदर्श विधेयक एक ऐसी प्रविधि है जो समस्त भूजल अवस्थापनाओं के पंजीकरण की व्यवस्था को थोप कर और भूजल के आवश्यक्ता से अधिक दोहन वाले क्षात्रों में भूजल के दोहन के लिये परमिट लागू करने हेतु आधार प्रदान करके भूजल के उपयोग पर राज्य के नियंत्रण को व्यापक करने की कोशिश करता है। आदर्श विधेयक भूजल के उपयोग पर सरकारी नियंत्रण हेतु एक सुस्पष्ट ढांचा निर्धारित करने के अतिरिक्त उपयोग की स्थायित्वशीलता के प्रति भी सीमित मात्रा में चिंता व्यक्त करता है। किन्तु यह आदर्श विधेयक उपयोगों की प्राथमिकता का निर्धारण नहीं करता है, घरेलूउपयोग के प्रश्न का विशिष्ट समाधान नहीं प्रस्तुत करता है, भूजल के छोटे और बड़े उपयोगकर्ताओं तथा वाणिज्यिक और अवाणिज्यिक उपयोगों के बीच अंतर नहीं करता है और इस बात को संज्ञान में नहीं लेता है कि भूस्वामियों के उपयोग के अधिकार पर ध्यान देने वाली वर्तमान तथा प्रस्तावित प्रणालियों में उन लोगों को बाहर रखा गया है जो भूस्वामी नहीं है या भूमि पर काबिज नहीं हैं

पिछले दशक में बहुत से राज्यों ने भू जल सम्बंधी कानून लागू किये हैं जो प्रायः आदर्श कानून से काफी मिलते जुलते हैं। 2002 का केरल अधिनियम तथा 2005 का दिल्ली अधिनियम के मामले में ऐसा ही है।

ग. विकेन्द्रीकरण तथा सहभागिता

हाल के वर्षों में विकेन्द्रीकरण तथा सहभागिता नीति निर्माता क्षोत्रों में दो केन्द्रीय शब्द रहे हैं। यद्यपि इस बारे में सामान्य सहमति की परिभाषाएं रही हैं कि विकेन्द्रीकरण तथा सहभागिता के विधिक परिप्रेक्षय में क्या मायने हैं, लेकिन जल के क्षोत्र व्यवहार अपेक्षााओं से काफी भिन्न रहा है। अस्तु, जल क्षोत्र के परिप्रेक्षय में विकेन्द्रीकरण का पंचायती राज संस्थाओं से बहुत ही कम संबंध रहा है तथा सहभागिता को उस सिद्धान्त के रूप में न देखकर जो पानी के समस्त उपयोगकर्त्ताओं को उसके अधिक समतामूलक तथा स्थायित्वशील उपयोग में योगदान करने की अनुमति देने की कोशिश करे, सीमित संख्या के उन लोगों को शामिल करने के रूप में समझा गया जिनके अपने नियंत्रण की भूमि से संबंधित जल में विशिष्ट हित हों। सहभागिता तथा विकेन्द्रीकरण के इन विशिष्ट संदर्भों के दो मुख्य उदाहरणों के बारे में यहां चर्चा की जाएगी। पहले जल उपभोक्ता संघ हैं जो ऐसे निकाय हैं जिन्हें दुनिया के विभिन्न देशों में सहभागी सिंचाई प्रबंधन के रूप में लागू किया जा रहा है। दूसरा है स्वजलधारा, जो केन्द्र सरकार द्वारा 2003 से जल उपभोक्ता संघों के दर्शन पर ही आधारित है किन्तु अधिक विशेष रूप से पेय जल पर केन्द्रित है।

पिछले दशक में जल उपभोक्ता संघों के गठन के कार्य को लगातार बढ़ती हुई तीव्रता के साथ किया गया है। आज बहुत से राज्यों में जल उपभोक्ता संघ विधेयक हैं। इन राज्यों में आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश से लेकर उड़ीसा और राजस्थान तक के राज्य शामिल हैं। ये अधिनियम विभिन्न समयों पर लागू किये गये और इनमें प्रस्तावित योजनाएं समय के साथ साथ विकसित हुई हैं, यद्यपि प्रत्येक मामले में आधारभूत योजना कमोबेस समान ही रही है। यह भाग इन विधेयकों का तुलनात्मक विश्लेषण नहीं करता बल्कि महाराष्ट्र में लागू किये गये नवीनतम अधिनियम पर केन्द्रित है क्योंकि इस बात की

संभावना नहीं है कि अन्य राज्य जहां विधेयक अभी लागू किया जाना है, 'पुरानी' योजनाओं की तरफ लौटेंगे।

महाराष्ट्र सिंचाई परियोजनाओं का किसानों द्वारा प्रबंधन अधिनियम 2005 के अंतर्गत जल उपभोक्ता संघों की स्थापना अपने सदस्यों के बीच पानी के समता मूलक बंटवारे को सुनिश्चित करने, सिंचाई प्रणालियों का रखरखाव करने, अधिकतम संभव कृषि उत्पादन को सुनिश्चित करने के लिये तथा पर्यावरण सुरक्षाा के लिये भी पानी के दक्षातापूर्ण, मितव्ययितापूर्ण तथा समतामूलक वितरण और उपभोग को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से की गई है। यह अधिनियम जहां स्थानीय स्तर पर सिंचाई में किसानों को शामिल करने के लिये विकेन्द्रीकरण योजना की व्यवस्था करता है वहीं महाराष्ट्र जल संसाधन विनियामक प्राधिकरण या अन्य विहित प्राधिकारियों को भी उल्लेखनीय अधिकार देता है। विशेष रूप से उन्हें सिंचाई के उस समादेश क्षोत्र के निर्धारण का अधिकार है जिसके लिये कोई जल उपभोक्ता संघ स्थापित किया जाएगा। और फिर वही प्राधिकारी जलीय आधार पर या 'प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिगत' जल उपभोक्ता संघों का संविलयन या विभाजन भी कर सकता है। दूसरे शब्दों में, स्थानीय स्तर पर दिया गया अधिकार इस बात से सीमित हो जाता है कि प्राधिकारियों को जल उपभोक्ता संघों को बनाने और विखण्डित करने का व्यापक विवेकाधिकार है।

इस अधिनियम के अंतर्गत स्थापित प्रणाली इन अर्थों में बाधक है कि जल उपभोक्ता संघ के एक बार गठित हो जाने के बाद व्यक्तिगत रूप से किसी को भी कोई भी पानी जल उपभोक्ता संघ ढाचे के बाहर आपूर्ति नहीं किया जाएगा और यह योजना भूमि के सभी स्वामियों तथा कब्जेदारों पर लागू होगी। इन अर्थों में जल उपभोक्ता संघों को सिंचाई प्रणाली का प्रशासन करने का प्रशासनिक भार वहन करने के लिये बाध्य किया गया है और यह कार्य वे कैसे करना चाहेंगे इसके रास्ते उन्हें खुद ही निकालने हैं। और फिर, इस अधिनियम में जल उपभोक्ता संघों के लिये एक समान माडल की व्यवस्था की गई है – चाहे स्थानीय स्तर पर वर्तमान व्यवस्थाएं जो भी हों और पानी के उपयोग में समता और स्थायित्वशीलता की दिशा में उनकी सफलताएं जो भी रही हों।

इस अधिनियम में दिये गये ढांचे में लाभों तथा भारों के बीच एक संतुलन स्थापित करने की कोशिश की गई है। एक तरफ जल उपभोक्ता संघों को अधिक सुनिश्चित जल आपूर्ति तथा उन्हें आवंटित किये गये पानी पर उनके अधिक नियंत्रण के माध्यम से लाभ मिलेगा। फिर प्रधिकरण की यह जिम्मेदारी होगी कि संघों के लिये जितनी मात्रा में पानी अधिकृत किया गया है उतनी आपूर्ति उन्हें की जाय। नहरों से मिलने वाले पानी के अतिरिक्त अपने समादेश क्षोत्र के अंतर्गत भू जल का उपयोग करने का भी उन्हें अधिकार है। दूसरी तरफ, यह अधिनियम जल उपभोक्ता संघों को बहुत से अधिकार देता है जो वास्तविकता में देखा जाय तो दायित्व हैं। इनमें बहुत से प्रकार्यों का समावेश है जो जल उपभोक्ता संघों के सदस्यों के बीच परनी के वितरण के विनियमन तथा अनुश्रवण से लेकर सदस्यों के पानी के हिस्से के आकलन, सदस्यों को समता मूलक तरीके से जल आपूर्ति करने के उत्तरदायित्व, सेवा प्रभार तथा जल प्रभार की वसूली, नहर प्रणाली के रख रखाव एवं मरम्मत तथा सदस्यों के बीच विवादों को सुलझाने तक फैले हुए हैं। ये विशद और सम्भवतः बोझिल अधिकार हैं। जल उपभोक्ता

संघों को अवस्थापनाओं के प्रबंधन का ही कार्य नहीं दिया गया है बल्कि इन्हें ऐसा संस्थागत ढांचा भी उपलब्ध कराना है जो ऐसी सारी सेवाएं समता मूलक तरीके से उपलब्ध करा सकें जो किसी भी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा प्रदान की जा सकती हैं। यदि जल उपभोक्ता संघ पंचायती राज संस्थाओं से सम्बद्ध होते तो इस प्रकार की व्यवस्थाएं एक स्पष्ट विकल्प हो सकती थीं किन्तु यह समझ पाना मुश्किल है कि बिना किसी जनतांत्रिक वैधता वाला भूस्वमियों का संघ इन तमाम कार्यों को अपने सदस्यों तथा अपने आस पास के व्यापक समाज के लिये समता मूलक तथा स्थायित्वशील तरीके से कैसे सम्पन्न कर पाएगा। मात्र एक उदाहरण लें कि जबकि पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं तथा निचली जातियों की सहभागिता सुनिश्चित करने के लिये बहुत से नियम हैं इस बात की पूरी संभावना है कि जल उपभोक्ता संघों पर अधिकांश मामलों में उच्च जाति के पुरुषों का प्रभुत्व होगा।

जल उपभोक्ता संघों के अधिकारों तथा दायित्वों वाली धारा के पूरक के रूप में वित्तीय व्यवस्थाओं वाली एक धारा भी है। इस स्तर पर भी यह अधिनियम मौलिक रूप से एक नई प्रणाली प्रस्तावित करता है। धारा 54 के अंतर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि वित्त पोषण के मुख्य स्रोत सरकार से नहीं आएंगे। जल उपभोक्ता संघों को अपने खर्चे जल प्रभार, उधार, दान तथा अनुदान से वहन करने हैं। दूसरे शब्दों में यह अधिनियम यह सुनिश्चित करने की कोशिश करता है कि जल उपभोक्ता संघों वित्तीय रूप से स्वतंत्र हों और वित्तीय रूप से जीवन क्षाम हों। इस तथ्य की पुष्टि जल उपभोक्ता संघों को सिंचाई से अप्रत्यक्षा रूप से जुड़ी हुई लाभकारी गतिविधियों जैसे बीज, उर्वरक, कीट नाशक या कृषि उत्पादों के विपणन में कार्य करने के लिये दिये जाने वाले प्रोत्साहन से होती है।

जल उपभोक्ता संघों के गठन में सहायता के लिये केन्द्र सरकार ने स्वजलधारा नामक एक योजना की शुरुआत की है जो 2003 से गांवों में बेहतर पेय जल सुविधा सुनिश्चित करने के लिये नए तरीके की गतिविधियों को सुदृढ़ करने का प्रस्ताव कर रही है। स्वजल धारा के मार्गदर्शक सिद्धान्त विश्व बैंक प्रायोजित स्वजल नामक परियोजना के सीधे प्रतिफल हैं और उनमें ठीक वही दर्शन भी निहित है। विश्व बैंक की जल नीतियों तथा स्वजलधारा योजना के बीच सीधे अंतर्सम्बंधों के अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि यह योजना जिसमें कि महत्वपूर्ण योजना होने की संभावना है, संसद में प्रस्तुत किसी भी विधेयक की अंग नहीं है।

इन मार्गनिर्देशों को अपनाने का प्रयोजन सरकार को सीधे सेवा प्रदान करने वाली भूमिका से व्यापक रूप से खुद लोगों द्वारा संचालित गतिविधियों में सहयोग करने की भूमिका में लाना है। दूसरे शब्दों में ये मार्गनिर्देश मौलिक अधिकारों जैसे कि पेय जल की व्यवस्था करने के दायित्व से सरकार द्वारा धीरे धीरे हाथ खींच लिये जाने का प्रस्ताव करते हैं। सरकार द्वारा दिया जाने वाला तर्क है कि लोगों की सोच पानी को मौलिक अधिकार के रूप में देखने की आंशिक रूप से इयलिये भी है कि सरकार द्वारा पानी को निःशूल्क उपलब्ध कराया गया है। सरकार का आकलन है कि इसीलिये लोग यह नहीं समझ सके हैं कि पानी की उपलब्धता कम है और कि यह एक सामाजिक आर्थिक 'वस्तु' है। इसीलिये आपूर्ति प्रेरित सोच से उस सोच की तरफ जाने की आवश्यकता है जो अंतिम उपयोगकर्ताओं की आवश्यकता पर ध्यान दे, जो तब वैसी सेवाएं पा सकेंगे जैसी वे चाहते हैं। इस मांग केन्द्रित

कार्यनीति में सोच के जिस परिवर्तन की आवश्यकता है वह यह है कि लोगों को वे सेवाएं दी जाएंगी जिसके लिये भुगतान करने के वे इच्छुक हों। स्वजलधारा का मुख्य आर्थिक तर्क है कि पेय जल परियोजनाओं की पूंजीगत लागत का ऐक हिस्सा और इनके संचालन और रखरखव की पूरी लागत लोगों से भुगतान कराई जानी चाहिये।

स्वजलधारा बहुत से सिद्धान्तों पर आधारित है। प्रथमतः इसमें एक मांग केन्द्रित सोच को लागू करने का प्रस्ताव किया गया है जिसमें कुछ स्तर की सामुदायिक सहभागिता भी हो। दूसरे, इसकी कोशिश पेय जल संरचनाओं का स्वामित्व समुचित पंचायतों को सौंपने की है जिन्हें जल आपूर्ति तथा स्वच्छता से संबंधित नियोजन से रखरखाव तक सभी गतिविधियों को हाथ में लेने के अधिकार दिये गये हैं। तीसरे, स्वजलधारा 40 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के आपूर्ति स्तर के लिये पूंजीगत लागतों का कम से कम 10 प्रतिशत का अंशदान समुदायों पर थोपती है और यह बात भी थोपती है कि वे संचालन और अनुरक्षाण की 100 प्रतिशत जिम्मेदारी निभाएं। इसमें यह बात भी थोपी गई है कि सामुदायिक अंशदान कम से कम 50 प्रतिशत नगद होगा।

www.ielrc.org